AMOGHVARTA

ISSN : 2583-3189

रेणु की कहानियों में संवाद –योजनाः एक अवलोकन

ORIGINAL ARTICLE

Author
डॉ. अमृत प्रजापति
सहायक प्राध्यापक (हिंदी विभाग)
नन्द लाल सिंह महाविद्यालय
दाउदपुर, सारण, बिहार
जय प्रकाश विश्वविद्यालय
छपरा, बिहार, भारत

शोध सार

संवाद योजना का तात्पर्य कहानी में प्रयुक्त संवादों की संरचना, भाषा, शैली, उद्देश्य और उनके कथात्मक प्रभाव से है। सफल संवाद वही होता है जो स्वाभाविक हो, पात्र के अनुकूल हो और कथा को गति प्रदान करे। रेणु की कहानियों में संवाद योजना अत्यंत सशक्त है, क्योंकि वे संवादों को केवल कथन तक सीमित नहीं रखते, बल्कि उन्हें कथ्य, भाव और यथार्थ का संवाहक बनाते हैं। रेणु ने मनुष्य की मज़बूरी उसकी पीड़ा, पैसे के अभाव में ढहती जिंदगी को बहुत नजदीक से देखा है, इसीलिए उनकी कहानियों में मौजूद संवेदनाएँ सीधे प्रभाव डालती है। इनके संवादों का महत्व इस कारण और भी बढ़ जाता है कि उनके अधिकांश पात्र ग्रामीण पृष्ठभूमि से आते हैं। ऐसे में संवाद ही उनके जीवन, सोच और संघर्ष को सबसे प्रभावी रूप में प्रस्तुत करते हैं। उनका संवाद पत्रोचित होने के कारण कहानियां जीवंत हो उठती है और मानस पटल पर लम्बे समय तक अपना प्रभाव बनाये रखती है रेणु ने हमेशा माना है कि संवाद योजना ऐसी होनी चाहिए कि कथानक में गति बनी रहे। चरित्रों की परत–दर–परत खोलने की अद्भुत शैली उनके संवाद योजना की अपनी विशेषता रही है।

मुख्य शब्द

कहानी, संवाद, उपन्यास, समाज, अभिव्यक्ति, कथाकार.

संवाद उपन्यास अथवा कहानी की सजीवता का मूल तत्व माना जाता है। कथाकार संवादों के अध्ययन से ही वह सब कहता है जो कहना है जो कहना उसका अभिप्रेत होता है इसलिए अनेक कथाकारों और कथा – आलोचकों की यह स्पष्ट धारणा है कि जो कथाकार संवाद – सृजन में जितना ही कुशल होता है, उसकी कहानियाँ उतनी ही श्रेष्ठ होती है। पात्रों के बीच चलनेवाले संवाद ही पात्रों के वर्ग–चरित्रों और उनकी मनोदशा को प्रतिबिम्बित करते हैं। यह कहना असंगत नही कि कथोपकथन या संवाद कहानी के पात्रों के मध्य संतुलन स्थापित करते हैं– ''कथोपकथन द्वारा ही विभिन्न पात्रों में एक–दूसरे के विरुद्ध संतुलन पैदा होता है तथा प्रत्येक के चरित्र–चित्रण में परिपूर्णता आती है। यही सही है कि साहित्य में प्रयुक्त वार्तालाप शब्दशः जीवन से नही लिया जाता, परन्तु वह कार्य – व्यापार को वास्तविकता अवश्य प्रदान करता है साथ ही, मूलभूत संघर्ष से उदय होकर वह उसे अग्रसर करता है और इस प्रकार कार्य – व्यापार को विकसित करता चलता है। कथोपकथन में वर्तमान काल का प्रयोग होता है, जिसके कारण कार्य अत्यन्त निकट, आँखों के सामने तीव्र गति और गहनता के साथ घटित होता जान पड़ता है तथा साहित्य इसके द्वारा कहीं अधिक विविधता, विश्रान्ति और स्वाभाविकता की वृद्धि होती है।''[1] इस कसौटी पर रेणु की कहानियों की संवाद – योजना अक्षरशः सफल है। रेण के पात्रों के द्वारा प्रयोग संवाद न केवल कथानक को वास्तविकता के धरातल पर प्रतिष्ठित करते हैं बल्कि उनके चरित्रों के अन्तर्जगत की परत–दर–परत भी खोलते चलते हैं।

रेणु की कहानियाँ अधिकांशतः ग्रामीण जीवन– यथार्थ से जुड़ी होने के बावजूद प्रेमचंद की कहानियों से अपने कथा – शिल्प में भिन्न प्रकार की है, इसलिए उनके पात्रों की भाषा में भी जैसी आंचलिकता है, वह दूसरे कहानीकारों में नहीं है। इस दृष्टि से यह कहना सर्वथा सार्थक है– ''रेणु की आंचलिकता वस्तुतः संवादो के कुशल नियोजन पर ही निर्भर करती है। भाषा के विविध आकर्षणों में से स्थानीय एवं प्रचलित शब्दों के स्तरीय अथवा सामान्य प्रयोगों में संवादों की प्रभावशीलता निहित रहती है। रेणु के साहित्य में संवाद ही ऐसे हैं जिनसे बिहार और पूर्णिया जिले के अंचल का बोध होता है और ज्यों–ज्यों हम रचना में आगे बढ़ते हैं– देशीयता, जीवन–दर्शन, रीति–रिवाज, रहन–सहन और ग्राम्य मूल्य बोध से परिचित होते हैं। रचना के अंत तक हम उस परिवेश और पात्र के पूर्ण जानकर ही नहीं एक आत्मीय भी बन जाते हैं। पुरुष हों या नारियाँ, दोनों की मनःस्थितियों और जीवन चर्चा के भागीदार होकर पाठक रचनाकार के उद्देश्य की पूर्ति में पूरा भागीदार हो जाता है।''[2]

रेणु की कथात्मक रचनाओं के इतना जीवंत और प्राणवान् होने का कारण निर्मल वर्मा बताते हैं– "उन्होंने बहुत निकट से मनुष्य की पीड़ा, मजबूरी और गरीबी को देखा था, इसलिए वह उसके साथ कोई सैद्धांतिक खिलवाड़ नहीं कर पाते थे। रेणु की समग्र मानवीय दृष्टि को अनेक जनवादी और प्रगतिशील आलोचक संदेह की दृष्टि से देखते थे–कैसा है यह अजीब लेखक, जो गरीबी की यातना के भीतर भी इतना रस, इतना संगीत, इतना आनंद छक सकता है, सूखी, परती जमीन के नाद उदास मरुस्थल में सुरों, रंगों और गंधों की रासलीला देख सकता है, किंतु उसके भीतर से झाँकती धूल–धूसरित मुस्कान को नहीं देखना भूलता–एक सौंदर्यवादी की तरह नहीं, जो सुंदरता को अन्य जीवंत तत्त्वों से अलग कर के उनका रसास्वादन करता है।

रेणु इस रचनात्मक सत्य के प्रति सदैव सचेत रहे कि संवाद की भाषा पात्रोचित होने के साथ–साथ इतनी चुस्त हो कि पाठकों को बोध ही कथानक को गति और विस्तार भी मिले। रेणु की अनूठी कथा–शैली का ही एक अनूठा रूप है, उनकी कहानियों में संवाद – योजना। ''रसप्रिया'' कहानी का नायक बूढ़ा मिरदंगिया पंचकौड़ी मोहना चरवाहा को देखकर हर्षातिरेक से उमग उठता है और दोनों से संवाद चल पड़ता है। यह संवाद दोनों की वय और मनोदशा को सहज स्वाभावित रूप से अभिव्यंजित करता है। मोहना ने मुस्कराकर पूछा, ''तुम्हारी उँगली तो रसपिरिया बजाते टेढ़ी हुई है, है न?'' ''ऐं!'' बेढ़े मिरदंगिया ने चौंकते हुए कहा– ''रसपिरिया? .....? हाँ, ... नहीं। तुमने कैसे..... तुमने कहाँ सुना बे.....?'' ''बेटा'' कहते–कहते वह रुक गया। .....

परमानपुर में उस बार एक ब्राह्मण के लड़के को उसने प्यार से ''बेटा'' कह दिया था। सारे गाँव के लड़कों ने उसे घेर कर मारपीट की तैयारी की थी– ''बहरदार होकर ब्राह्मण के बच्चे को बेटा कहेगा? मारो साले बुड्ढे को घेरकर .....। मृदंग फोड़ दो।"[3] वर्तमान संदर्भ से जुड़े संवाद से अतीत की घटना का चित्रण साधारण संवाद – योजना नहीं है और रेणु संवाद–सृजन की इस संवाद–योजना कला में निष्णात ही नहीं हैं, वह इसके द्वारा मिरदंगिया की उस अन्तर्वेदना के साथ ही वर्णवादी व्यवस्था के उस आतंक को भी इतने छोटे–छोटे वाक्यों से गठित संवादों के द्वारा मूर्त कर देते हैं, जिससे भारतीय समाज आज भी मुक्त नहीं हो पाया है। परिस्थितियों और मनःस्थितियों का इतना गत्यात्मक चित्रण, वह भी संवादों के माध्यम से बहुत कम कथाकारों की कहानियों में मिलता है। इसी कहानी के दो स्थलों की संवाद– योजना द्रष्टव्य है–

(क) पोटली से मूढ़ी और आम निकालते हुए मिरदंगिया बोला– ''हाँ गरम पानी ! तेरी तिल्ली बढ़ गई है, गरम पानी पियो।''

– ''यह तुमने कैसे जान लिया? फारबिसगंज के दागडर बाबू भी कह रहे थे, तिल्ली बढ़ गई। दवा.....।''

–''माँ भी कहती है, हल्दी की बुकनी के साथ रोज गरम पानी। तिल्ली गल जायेगी।'' मिरदंगिया ने मुस्कुराकर कहा– ''बड़ी सयानी है तुम्हारी माँ।''

केले के सूखे पत्तल पर मूढ़ी और आम रखकर उसने बड़े प्यार से कहा– ''आओ, एक मुट्ठी खालो।'' –''नहीं, मुझे भूख नहीं।''[4]

(ख) सोनमा ने तो गाली ही दी थी– ''गुरुगिरी करता है, चोट्टा।'' रमपतिया आकाश की ओर हाथ उठाकर बोली थी– ''हे दिनकर ! साच्छी रहना। मिरदंगिया ने फुसलाकर मेरा सर्वनाश किया है। मेरे मन में कभी चोर नहीं था। हे सुरूज भगवान! इस दसदुआरी कुत्ते का अंग–अंग फूटकर .....।"[5]

पहले स्थल पर मिरदंगिया और मोहना के बीच चलनेवाले संवाद में दोनों के व्यवहार और उसके पीछे उनकी उम्र और स्थितियों की सजीव और स्वाभाविक अभिव्यक्ति है तो सोनमा के संवाद उसके आक्रोश को व्यंजित करते हैं और रमपतिया की मिरदंगिया के विरुद्ध बोली उसके सामाजिक स्तर के अनुरूप दिखलाई पड़ती है। रेणु पात्रों की संवाद – योजना में वाक्यों की इतनी महीन बनावट है किसी भी वाक्य से एक दो शब्द हटा दें तो संवाद का प्रभाव और सौन्दर्य बिखर जाता है।

रेणु संवादों को कहानी की संरचना का महत्वपूर्ण अंग मानते थे। इसलिए वह अपनी हर कहानी की अर्न्तवस्तु और पात्रों के अनुरूप संवादों को अत्यन्त सूक्ष्मता और सावधानी के साथ बुनते दिखलाई पड़ते हैं। ''तीर्थोदक'' कहानी ग्रामीण परिवारों की धर्मपरायणता पर आधारित है और कथाकार ने उसी के अनुसार पात्रों के संवादों का सृजन किया है। तीर्थं जाने के सवाल पर उठ रहे कलह को निम्नांकित संवाद में बड़ी स्वाभाविकता के साथ व्यंजित किया गया है, बड़ी बहू मद्धिम आवाज में घूँघट के नीचे से बोली– ''मैं किसी के पैसे से इल्ली – दिल्ली नहीं घूमी हूँ। सामने तो खड़ा है पूत। पूछ ले कोई, एक पैसे का पान भी खरीदा था किसी के लिए? मेरे काका का कितना रुपया खर्च हुआ है, पूछा है किसी ने कभी?'' वृद्ध बोध बाप ने फ़िर खखारकर अपनी उपस्थित का संकेत दिया। बोले– ''लल्लकी माँ ! यों तो तीरथ जानेवाले को कोई रोकता, पाप होता है। लेकिन पुरूख – वचन। सब सुन चुकी हूँ पुरूख वचन। चालीस साल से और किसका वचन सुन रही हूँ?'' बूढ़ी की आँखों में आँसू आ गये भरे गले से बोली– ''कभी बात से वेबात या चाल से कुचाल नहीं चली। तिस पर रोज तीन कोड़ी गालियाँ, सास – सुसर और इनकी।'' बैठकखाने से बजरंगी चौधरी ने चिल्लाकर कहा– ''शंकर! आँगन में विदेसिया नाच हो रहा है क्या? जाने क्यों नहीं देते? क्यों रोकते हो? कौन रोकता है?'' ''सन्नाटा ! बूढ़ी उठी। चुपचाप गहदेवता को पावलागी करने गयी जौ बाबा बैदनाथ, जौ बाबा विश्वनाथ। बहुत दिनों की लालसा मन की, पूरन करो ठाकुर।''[6] यह संवाद कथा की अर्न्तभूमि के साथ–साथ पात्रों की मनोदशाओं के अन्तर को भी सजीव कर देता है। ''रसप्रिया'' और ''तीर्थोदक'' की संवाद योजना अपनी वस्तु और पात्रों के अनुरूप ही पृथक और विशिष्ट परिलक्षित होती है। आगे बढ़ने पर ''ठेस'' कहानी की संवाद – शैली एक दूसरे रूप में दिखलाई पड़ती है। इस कहानी में कथाकार ने संवादों की रचना में इस बात का ध्यान रखा है कि पात्र अपने वर्ग चरित्र के अनुसार ही बोले। उदाहरण के लिए निम्नांकित स्थल का संवाद स्मरणीय है– माँ रसोईघर के अन्दर पकवान आदि बनाने में व्यस्त थी। बोली– '' मैं अकेली कहाँ–कहाँ, क्या–क्या देखूँ।..... अरी मँझली, सिरचन को बुंदिया क्यों नहीं देती?'' माँ की बोली सुनते ही मँझली भाभी की भौंहे तन गई। मुट्ठी भर बुंदिया सूप में फेंककर चली गई। सिरचन ने पानी पीकर कहा– मँझली बहूरानी अपने मैके से आई हुई मिठाई भी क्या इसी तरह हाथ खोलकर बाँटती है क्या? बस मँझली भाभी अपने कमरे में बैठकर रोने लगी। चाची ने माँ के पास जाकर लगाया– ''छोटी जाति का मुँह भी छोटा होता है। मुँह लगाने से सिर पर चढ़ेगा ही।".....

चाची का यह कथन कि – ''छोटी जाति का मुँह भी छोटा होता है। मुँह लगाने से सिर पर चढ़ेगा ही।" उनके सामंती वर्ग चरित्र का सूचक है क्योंकि इस उक्ति में सिरचन के प्रति हिकारत और नफरत का भाव व्यंजित हो रहा है। दूसरी ओर जब सिरचन के मानवीय दर्प पर चोट पहुँचती है तो वह शीतलपाटी आदि बनाना छोड़कर चला जाता है। उसके मौन संवाद में उसका मानवीय गौरव ही हुँकारता प्रतीत होता है वह कुछ बोलता नही, लेकिन उसका व्यवहार ही एक प्रकार का चुप्पी भरा संवाद है। यथा–सिरचन ने चाची को अपनी ओर अचरज से घूरते देखकर कहा ''छोटी चाची, जरा अपनी डिबिया का गमकौआ जर्दा तो खिलाना। बहुत दिन हुए।''

संवाद–योजना की कलात्मकता की दृष्टी से 'तीसरी कसम' एक अद्भुत कहानी है। इसमें न केवल एक चालीस वर्षीय सालमन विधुर गाड़ीवान हिरामन और नौटंकी की एक्ट्रेस हीराबाई के बीच घटित कोमल व्यवहारों की अभिव्यक्ति हुई है वरन् उनकी प्रकृति और मनोदशाओं के अंकन में ये संवाद सहज स्वाभाविकता की सृष्टि भी करते हैं। गौण पात्रों के पारस्परिक संवाद भी अत्यन्त स्वाभाविक बन पड़े हैं।

हिरामन और हीराबाई के यह आत्मीय सहज संवाद रेणु की कहानी – कला के सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करते हैं–

(क) "भैया, तुम्हारा नाम क्या है?''

ह–ब–हू फेनू गिलास! हिरामन के रोम–रोम बज उठे। मुँह से बोली नही निकली। उसके दोनों बैल भी कान खड़े करके इस बोली को परखते हैं।

''मेरा नाम !

..... नाम मेरा है हिरामन।''

उसकी सवारी मुस्कुराती है। मुस्कुराहट में खुशबू है श्तब तो मीठा कहूँगी, भैया नहीं। मेरा नाम भी हीरा है। ''इस्स। हिरामन को परतीत नही।'' मर्द और औरत के नाम फर्क होता है।

''हाँ, जी, मेरा नाम भी हीराबाई है।''

(ख) ''आप मुझे गुरूजी मत कहिए।''

''तुम मेरे उस्ताद हो। हमारे शास्तर में लिख है, एक अच्छा सिखानेवाला भी गुरू और एक राग सिखानेवाला भी उस्ताद।'' ''इस्स। शास्तर – पुरान भी जानती है.....मैंने क्या सिखाया? मै क्या?''

हीरा हँसकर गुनगुनाने लगी– ''हे अ–अ–अ–सावना – भादवा के – र..... ।''

– हिरामन अचरज के मारे गूँगा हो गया। ..... इस्स। इतना तेज जेहन ! हू–ब–हू महुआ घटवारिन।

उपर्युक्त संवादों की सहजता देखने से यह भी पता चलता है कि एक श्रेष्ठ कथाकार की प्रतिभा की यह कसौटी है कि वह पात्रों के बीच सहज और स्वाभाविक संवादों के सृजन में कुशल हो। ये संवाद दोनों पात्रों के चरित्रगत वैशिष्ट्य को जीवन करने में पूर्णतः सफल हैं। इसी कहानी के सामान्य पात्रों खासकर – हिरामन के साथी गाड़ीवानों के पारस्परिक संवाद की कथाकार ने इतनी वास्तविकता के साथ प्रस्तुत किए हैं कि पात्र सजीव हो उठे हैं। कहना असंगत नहीं होगा कि यह क्षमता उसी लेखक में होती है, जो न केवल जीवन की परिस्थितियों को अपनी सूक्ष्म दृष्टि से देखता – परखता है, बल्कि विभिन्न परिस्थितियों और मनःस्थितियों में लोगों के आपसी विचार–विनिमय की भाषा को गंभीरता ग्रहण करता है। यहाँ एक ओर हिरामन के साथी लालमोहर, धुन्नी, लहसनवा, नेपाली दरबान और पलटदास की बात–चीत की भाषा में स्वाभाविकता के कारण कहानी का हर प्रसंग जीवन्त हो उठा है। रेणु इतने बड़े कथा – शिल्पी है,कि वह पशु और मनुष्य के बीच भी संवादों का सृजन करते हैं। पहले हिरामन और उसके साथियों का संवाद देखें।

लाल मोहर ने लाल कागज के टुकड़ों को छूकर देखा – ''पास। वाह रे हिरामन भाई। लेकिन पाँच पास लेकर क्या होगा? पलदास तो फिर पलटकर आया ही नही है अभी तक।'' हिरामनं ने कहा ''जाने दो अभागे को। तकदीर में लिखा नही।. ..... हाँ, पहले गुरूकसम खानी होगी सभी को, कि गाँव–घर में यह बात एक पंछी भी न जान पाये।'' लालमोहर ने उत्तेजित होकर कहा ''कौन साला बोलेगा गाँव में जाकर? पलटा ने अगर बदनामी की हो दूसरी बार से फिर साथ नही लाऊँगा।''[7]

इस कहानी की संवाद – योजना की एक विलक्षणता यह हैं कि रेणु ने हिरामन के बैलों के साथ उसके संवादों को भी अत्यन्त कलात्मकता के साथ प्रस्तुत किया है। एक स्थल पर तो मेला में पहुँचने पर हीराबाई भी जाते–जाते बैलों से आत्मीय स्वर में बात करती है। कथाकार की यह व्यापक संवेदना बहुत कम कथाकारों में दिखलाई पड़ती है। इस संवाद – कला के दो उदाहरण द्रष्टव्य हैः

(क) हिरामन ने अपनी सफर झोली से सहेजी हुई गंजी निकाली। गमछा झाड़कर कंधे पर लिया और हाथ में बालटी लटकाकर चला। उसके बैलों ने बारी–बारी से ''हँक–हँक'' करके कुछ कहा। हिरामन ने जाते–जाते उलटकर कहा – ''हाँ, हाँ, प्यास सभी को लगी है। लौटकर आता हूँ तो घास दूँगा, बदमाशी मत करो।

बैलों ने कान हिलाये।''[8]

(ख) हीराबाई जाते–जाते रुक गई। हिरामन के बैलों को सम्बोधित करके बोली अच्छा, मैं चली भैयन।

बैलों ने, भैया शब्द पर कान हिलाये।

''??..... ??..... ।''[9]

निष्कर्ष

फणीश्वरनाथ रेणु की संवाद योजना से यह भली–भाँति स्पष्ट हो जाता है कि कथा – शिल्प की दृष्टि से रेणु एक सिद्धहस्त कथाकार है। वह जितनी कुशलता से कथानक बनते हैं, वह उतनी ही कुशलता से अपने चरित्रों को खड़ा करते हैं और उतनी ही कुशलता के साथ उन पात्रों या चरित्रों के संवादों का सृजन करते हैं। हिन्दी के कथाकारों में रेणु की संवाद – शैली की कलात्मकता का कारण यह है कि रेणु कलात्मक तराश में विश्वास करते थे। कथाकार और ''हँस'' के प्रखर सम्पादक राजेन्द्र यादव ने आंचलिक कथाकार रेणु और शैलेश पटियानी की तुलना करते हुए यह सही लिखा है – ''हिन्दी में आँचलिकता का आगमन तो सन् 1954–55 में रेणु के 'मैला आँचल' के साथ हुआ मगर मटियानी सन् 51–52 से ही अपने पहाड़ी अंचल, वहाँ की बोली– बानी, चरित्र और कथानकों को वैसे ही रूप रंग–गंध–स्वरों के साथ पकड़ रहे थे। खौलते अनुभवों के साथ उनके पास कहानी की कला, लोककथाओं को गूंथने का मुहावरा कहीं भी रेणु से कम नही है बल्कि रेणु में जहाँ कलात्मक तराश (सोफेस्टिकेशन) और मध्यवर्गीय रूमानियत को रास आनेवाली सौन्दर्य चेतना है वहाँ मटियानी में जमीनी ऊर्जा और चरित्रों की बीहड़ जीवन्तता है। रेणु अज्ञेय से लेकर निर्मल वर्मा के पसन्दीदा लेखक हैं, उनके पास डिंग्री थी या नहीं, मुझे नहीं मालूम

लेकिन बहुपठित और बाकायदा प्रशिक्षित लेखक है।'' निस्सन्देह रेणु बहुपठित और प्रशिक्षित रचनाकार हैं और उन्होंने कहानी को एक सम्पूर्ण कला के रूप में स्वीकारते हुए उसका कथानक हो या चरित्र यानि संवाद – शैली उसे श्रेष्ठता प्रदान की है।

सन्दर्भ सूची

1. वर्मा, धीरेंद्र (1960) *साहित्य – कोश,* भाग– एक, प्रथम संस्करण, पृ. 206।
2. तिवारी, अल्पना (1994) *रेणु की नारी सृष्टि,* प्रथम संस्करण, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, पृ. 176–177।
3. रेणु, फनीश्वरनाथ (1981) *ठुमरी* (कहानी संग्रह), राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नयी दिल्ली पृ. 9।
4. वही, पृ. 13।
5. वही, पृ. 15।
6. वही, पृ. 26–27।
7. वही, पृ. 98–99।
8. वही, पृ. 111।
9. वही, पृ. 117 – 118।

––==00==––